ग्रामीण ग़रीबी से शहरी बेबसी तक

नोएडा इंडस्ट्रियल एरिया के मज़दूरों की सर्वे रिपोर्ट-2

नोएडा इंडस्ट्रियल एरिया के मज़दूरों की सर्वे रिपोर्ट-2

नोएडा इंडस्ट्रियल एरिया के मज़दूरों की सर्वे रिपोर्ट: भाग 1 ने गारमेंट कारख़ानों में काम कर रहे प्रवासी मज़दूरों के हालात पर प्रकाश डाला। ये मज़दूर—मुख्यत : नौजवान पुरुष—उत्तर प्रदेश, बिहार, मध्य प्रदेश तथा पश्चिम बंगाल जैसे राज्यों से काम की तलाश में यहाँ आते हैं। उनको मालूम है कि यह शहर उनकी श्रम शक्ति को निचोड़कर उन्हें बदले में मुश्किल से ज़िंदा रहने लायक मेहनताना भी नहीं देगा। नतीजतन, वो अमानवीय हालात में यहाँ जैसे-तैसे अपने दिन काटते हैं। उनकी मज़दूरी उनको अपना परिवार साथ में रख पाने और उनका ख़र्च उठा पाने की इजाज़त नहीं देती। किराये के साझा कमरों में रहने वाले इन मज़दूरों के लिए नोएडा कमाई का एक अस्थाई ठिकाना मात्र है।

सवाल यह उठता है कि जिन जगहों से ये मज़दूर आ रहे हैं, वहाँ किस तरह का आर्थिक संकट है, जिससे बचने के लिए उनको यहाँ के अमानवीय हालात में रहकर काम करने को मज़बूर होना पड़ रहा है? इसके जवाब का रास्ता भारत की ग्रामीण अर्थव्यवस्था में आए बदलावों और उनसे जनित खेती की समस्याओं के विश्लेषण से होकर जाता है। यह भूमि के स्वामित्व में मौजूद असमानता, ग़ैर-कृषीय सेक्टरों में उचित रोज़गार सृजन के अभाव जैसे मुद्दों से जुड़ा हुआ है। शहर में अति निम्न वेतन पर काम करने को विवश मज़दूर अपने मूल निवास में व्याप्त एक दीर्घकालिक आर्थिक संकट तथा बेरोज़गारी के भीषण प्रकोप के लक्षण मात्र हैं। इस समस्या की जड़ें ग्रामीण भारत में मौजूद हैं।

बेरोज़गारी से त्रस्त ग्रामीण भारत

भारत में पिछले कई दशकों से खेतों के कुल रकबे में कोई वृद्धि नहीं हुई है। खेती का कुल रकबा 1980 के दशक के बाद से ठहराव की स्थिति में है। जोत का औसत आकार भी लगातार घट रहा है। कृषि जनगणना के अनुसार **1980-81** में जहाँ एक औसत जोत का रकबा 1.84 हेक्टेयर था, वहीं, **2015-16** के हालिया कृषि जनगणना के मुताबिक यह 1.08 हेक्टेयर था। सीमित कृषि योग्य भूमि और बढ़ती जनसंख्या की वजह से न सिर्फ़ औसत जोत का आकार घट रहा है, छोटे और सीमांत किसानों की संख्या भी बढ़ रही है। **1980-81** में करीब 74 प्रतिशत जोतों का रकबा 2 हेक्टेयर से कम था। जबकि **2015-16** में करीब 86 प्रतिशत जोतों का रकबा 2 हेक्टेयर से कम था। कृषि भूमि का वितरण भी बेहद असमान है। 2015-16 में 2 हेक्टेयर से कम जोतों की कुल राष्ट्रीय जोतों के क्षेत्रफल में हिस्सेदारी मात्र 47 प्रतिशत थी। विषम असमानता वाली भारतीय ग्रामीण अर्थव्यवस्था में छोटी होती जोत और सीमांत तथा छोटे किसानों की बढ़ती प्रधानता से प्रति हेक्टेयर खेत पर निर्भर लोगों की संख्या बढ़ी है। इसके साथ ही साथ, फ़सलों को उगाने के लिए आवश्यक श्रम में तेज़ गिरावट आई है। नीचे दी गई तालिका 2000-01 और 2021-22 के बीच धान और गेहूँ में प्रयुक्त प्रति हेक्टेयर श्रम में प्रतिशत गिरावट को दर्शाती है। यह तालिका धान तथा गेहूँ दोनों उगाने वाले उत्तर भारत के चुनिंदा राज्यों के आंकड़ों को दिखाती है, लेकिन लगभग हर राज्य में फ़सलों में प्रयुक्त श्रम में गिरावट एक सार्वभौमिक तथ्य है। मुख्यत : धान तथा अन्य फ़सलों की खेती करने वाले दक्षिण भारतीय राज्यों में भी यही पैटर्न देखने को मिलता है। तमिलनाडु में धान की खेती में श्रम की मात्रा में 65 प्रतिशत, कर्नाटक तथा केरल में 56 प्रतिशत की गिरावट देखने को मिली है।

***[illegible]**: *[illegible] 2000-01**

[illegible] 2021-22 [illegible]

राज्य	धान	गेहूँ
उत्तर प्रदेश	24%	31%
हरियाणा	33%	52%
पंजाब	30%	67%
मध्य प्रदेश	31%	28%
बिहार	35%	34%

[illegible]: कृषि एवं किसान कल्याण मंत्रालय के 'प्लॉट लेवल कॉस्ट ऑफ़ कल्टिवेशन' के यूनिट लेवल आंकड़ो से लेखक की गणना।

बेहतर होती तकनीक तथा खेती करने के उन्नत तरीक़ों के अनुपालन की वजह से यह बदलाव अपने आप में खेती की बढ़ती उत्पादकता का परिचायक होता है। लेकिन, जब इस तथ्य को कृषीय अर्थव्यवस्था के अन्य संरचनात्मक पहलुओं के साथ जोड़कर देखा जाए तब समस्या का जटिल रूप प्रकट होना शुरू होता है। औसत जोत का आकार लगातार घट रहा है; फ़सलों में लगने वाले श्रम की मात्रा भी तेज़ी से घट रही है; जबकि खेती से गुज़र-बसर करने वाले लोगों की संख्या बढ़ती जा रही है। खेती में संलग्न लोगों की संख्या जहाँ **1983** में करीब 21 करोड़ थी, वहीं **2023-24** मे यह संख्या 28 करोड़ तक पहुँच गई। चिंता की बात तो यह है कि हाल के वर्षों में खेती में संलग्न लोगों का प्रतिशत बढ़ता गया है। 2024-25 में सकल मूल्य संवर्धन में मात्र 14 प्रतिशत का योगदान देने वाले कृषि सेक्टर में वर्कफ़ोर्स का 46 प्रतिशत हिस्सा काम कर रहा था। आवश्यकता ना होने के बावजूद खेतों में काम करना वास्तव में अर्थपूर्ण काम करना नहीं है। यह गाँवों में गैर-कृषीय रोज़गार की भारी कमी को ढकने का तकनीकी प्रयास मात्र है। कृषि में वर्कफ़ोर्स का एक बड़े हिस्से का संलग्न होना बेरोज़गारी के गंभीर स्तर का एक अप्रत्यक्ष संकेतक है।

छोटी जोतों और कम होती आवश्यक श्रम की मात्रा एक और तबक़े को सीधे तौर पर प्रभावित करती है—भूमिहीन ग्रामीण परिवार। खेत में काम कम होने से इनकी जीविका गंभीर रूप से प्रभावित होती है। भूमिहीनता की वजह से इनको खेत में काम न मिलने की स्थिति में खाने के लाले पड़ जाते हैं। ग्रामीण भारत में तकरीबन **41 प्रतिशत** परिवार 2018-19 में भूमिहीन थे। हक़ीक़त यह है कि रोज़गार के बेहतर अवसरों का भारी अभाव है। इन लोगों को मैन्युफ़ैक्चरिंग और सर्विस सेक्टरों में रोज़गार नहीं मिल पा रहा है। इस वजह से रोज़गार की तलाश में पलायन करने का दबाव सबसे ज़्यादा भूमिहीन परिवारों पर ही होता है।

बीरेंद्र यादव, *Matter of Material X*, 2019

प्रवास के अलावा कोई चारा नहीं

खेती के पास काम देने की सीमित क्षमता होती है। बढ़ती आबादी के साथ अगर ग़ैर-कृषीय क्षेत्रों में पर्याप्त मात्रा में रोज़गार का सृजन अपरिहार्य हो जाता है। लेकिन भारत में मैन्युफ़ैक्चरिंग सेक्टर नवउदारवादी दौर में न तो सकल मूल्य संवर्धन में अपना हिस्सा बढ़ा पा रहा है और न ही समुचित रोज़गार प्रदान कर पा रहा है। सर्विस सेक्टर सकल मूल्य संवर्धन का सबसे बड़ा भागीदार होने के बावजूद बेहद कम रोज़गार दे पा रहा है। भारत में नवउदारवादी दौर की इन संरचनात्मक कमज़ोरियो की विस्तृत चर्चा हमारे डोसियर [illegible] को पढ़ें।

ग्रामीण भारत में रोज़गार का यह गंभीर अभाव ही विपदाग्रस्त प्रवास को जन्म देता है। मुख्यत : भूमिहीन परिवार, और छोटे तथा सीमांत किसान परिवारों के लोग स्थानीय अवसरों के अभाव में शहरों की ओर पलायन करते हैं। सर्वे में शामिल मज़दूरों में से 42 प्रतिशत ने मज़बूरी में 18 वर्ष की आयु से पहले ही मज़दूरी करना शुरू कर दिया था। जबकि क़रीब 7 प्रतिशत ने 14 वर्ष की आयु प्राप्त करने से पहले ही। मात्र 12 प्रतिशत मज़दूरों ने 24 साल के बाद काम करना शुरू किया था। किशोरावस्था में काम करना मज़बूरी में काम करने की विवशता का संकेत होता है। न सिर्फ़ यह बच्चों का बचपना छीनता है, बल्कि उच्च शिक्षा जैसे अवसरों से भी उनको दूर करता है, जिसकी वजह से उनको भविष्य में आजीविका तथा ज़िंदगी के अन्य बेहतर अवसरों से वंचित होना पड़ता है। कृषि क्षेत्र के संकट का प्रभाव सब पर एक समान नहीं होता है। ग्रामीण समाज की असमानता और विपदाग्रस्त प्रवास में गहरा संबंध होता है।

हमारे सर्वे में शामिल मज़दूरों में 76 प्रतिशत के पास उनके गाँव में खेती की भूमि नहीं थी। उनके परिवार भूमिहीन थे। इस सर्वे में मुख्य रूप से भूमिहीन, सीमांत तथा लघु जोतों के सदस्य ही विपदाग्रस्त प्रवासी निकले। बड़ी जोतों वाले मज़दूर नगण्य थे। ग्रामीण भारत में रोज़गार का पैटर्न जहाँ खेती-प्रधान होता जा रहा है, वहीं परिवारों की आय का वितरण अधिकाधिक रूप से मज़दूरी प्रधान। एक औसत ग्रामीन परिवार की मासिक आय में मज़दूरी का हिस्सा 2013 में 33 प्रतिशत था, जो 2019 में बढ़कर 41 प्रतिशत हो गया। वहीं मासिक आय में खेती से होने वाली आय का हिस्सा इस दौरान 50 से घटकर 38 प्रतिशत हो गया। सीमांत और लघु जोत वाले किसानों के मामले में ग़ैर-कृषि मज़दूरी का हिस्सा इससे भी ज्यादा मात्रा में बढ़ा है और खेती से प्राप्त आय का हिस्सा अधिक मात्रा में गिरा है। खेती से होने वाली आय की गिरावट को खेती में बढ़ती संलग्नता के आलोक में देखने पर खेती एक अतिनिम्न उत्पादकता वाला क्षेत्र बनता जा रहा है। जीविकोपार्जन हेतु यह नाकाफ़ी है जिस वजह से ग्रामीण परिवार ग़ैर-कृषीय गतिविधियों में रोज़गार पाने को बेताब हैं। जीविकोपार्जन का यह संकट लोगों को रोज़गार की तलाश में दूर-दराज़ इलाक़ों में भटकने को विविश कर रहा है। यही कारण है कि किशोर तथा युवा दो पैसे कमाने के लिए इस शहरों में आते हैं तथा बेहद कम मज़दूरी पर काम करने को तैयार हो जाते हैं।

14 प्रतिशत मज़दूर अनपढ़ थे, जबकि 46 प्रतिशत ने पाँचवी कक्षा या उससे कम पढ़ाई की हुई थी। 10 प्रतिशत के पास स्नातक की डिग्री थी। भूमिहीनता न सिर्फ़ गाँव में बाशिंदों की आर्थिक नियति तय करती दिखती है, बल्कि शिक्षा के स्तर और प्रवास के स्वरूप की भी निर्धारक जान पड़ती है। भूमिहीनता की वजह से ग़रीबी की आशंका ज्यादा हो जाती है, इससे बच्चों को समय से पहले पढ़ाई त्यागकर काम पर लगना पड़ता है। इस कारण उनको अपनी ग़रीबी दूर करने लायक रोज़गार प्राप्त करने के लिए ज़रूरी शिक्षा नहीं मिलती, और ग़रीबी का यह चक्र निर्बाध चलता रहता है। इस चक्र का यदा-कदा टूटना अपवाद ही होता है। वर्तमान पीढ़ी पिछली पीढ़ी की आर्थिक विपन्नता को शहरों में नए रूपों में जीने को मज़बूर होती है।

नोएडा जैसे इंडस्ट्रियल क्षेत्रों, तथा शहरों में लगभग हर तरह के निम्न मेहनताना वाले श्रम की आपूर्ति करने वाले गाँव के प्रवासी मज़दूर ग्रामीण भारत में विद्यमान असमान भूमि वितरण, खेती में व्याप्त संकट एवं रोज़गार के अभाव के मारे हैं। उनका विपदाग्रस्त प्रवास ग्रामीण भारत में कायम भीषण आर्थिक संकट का द्योतक है। यह प्रवास भुखमरी से बचने के लिए ग्रामीण ग़रीबी से शहरी बेबसी की ओर एक यात्रा मात्र है।

उमेश यादव